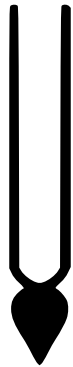

श्री श्रील भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ

परमहंस नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ १०८ श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी के प्रियतम
शिष्य व प्रतिष्ठान के वर्तमान आचार्य त्रिदण्डीस्वामी श्रील भक्तिवल्लभ तीर्थ महाराज

मर्यादापुरूषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्रजी एवं परमपूज्यपाद ॐ १०८
श्रील भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी की पावन आविर्भाव तिथि
श्री रामनवमी के सुअवसर पर प्रकाशित

प्रथम संस्करण
५ एप्रिल, २०१७

समर्पण

परमहंस
ॐ १०८ श्री श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी
महाराज जी के पावन श्रीकरकमलों में
समर्पित

श्री चैतन्य वाणी, वर्ष ६, अंक क्र. २, पृष्ठ क्र. ३५ से अनुवादित

३५, सतीश मुखर्जी रोड़, कोलकाता - २६.

परमहंस

ऊँ १०८ श्री श्रील भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी के

पावन श्रीकरकमलों में

सर्मपित

क्या मैंने कोई गलती की? 13

मेरा भजन 29

संक्षिप्त परिचय 45

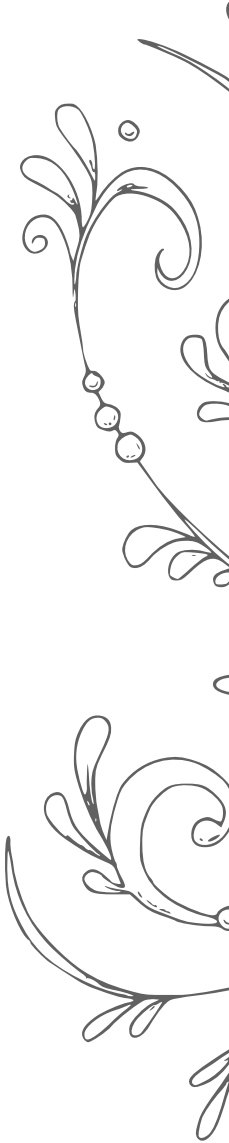

प्रस्तावना

परमहंस शिरोमणी क्षमागुणावतार श्री श्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी का गौड़ीय वैष्णव जगत के लिए जो अवदान है, उसके लिए गौड़ीय वैष्णव जगत हमेशा-हमेशा के लिए उनका ऋणी रहेगा। महाराज जी का रूप, उनके गुण एवं लीलाएँ सभी असामान्य, आश्चर्यचकित करने वाली एवं मनमोहक है । धर्म निष्ठा, सतीर्थ प्रीति एवं गुरु सेवा का जो अतुलनीय उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किया, उसे देख पूरा गौड़ीय वैष्णव समाज दाँतों तले उंगलियां दबाता है। गुरु, वैष्णव भगवान की सेवा प्रचेष्टा में उनके अदम्य उत्साहपूर्ण अनथक प्रयासों को देखकर ही उनके परमाराध्यतम गुरुदेव जगतगुरु श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद जी उन्हें "Volcanic Energy" वाला कहते; जबकि उनके ज्येष्ठ गुरु भ्राता श्रील भक्ति रक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज जी का कहना था कि जहाँ हम सब के प्रयास समाप्त होते हैं, वहाँ से माधव महाराज का प्रयास शुरू होता है । कुछ ही समय में श्री राधा कृष्ण मिलित-तनु भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभ ु जी की सर्वोत्तम आत्मकल्याण प्रद वाणी रूपी मंदाकिनी को जिस तूफानी लय से उन्होंने सम्पूर्ण भारत में प्रवाहित किया है उससे उपरोक्त कथन स्वत:सिद्ध भी होते हैं। वे श्री भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद जी के एकमात्र शिष्य थे जिन्होंने

सर्वप्रथम पंजाब में मायावाद के सुदृढ़ दुर्ग को भेद वैष्णव धर्म की पताका फहराई।

अन्य असमान्य लीलाओं की तरह उनकी लेखन शैली भी असामान्य, अन्तर्हृदय को झंझोरने वाली एवं मनमोहक है जो कि पाठक भी इस पुस्तक में प्रकाशित निबन्धों को पढ़ने के पश्चात अनायास ही अनुभव करेंगे। भगवान के पार्षद होते हुए भी अपने आप को निमित्त कर हमें शिक्षा देने का उनका अंदाज़ निराला है । महाराजश्री ने साधक के अन्तर्हृदय में उठने वाले प्रत्येक प्रश्न का हृदयस्पर्शी उत्तर एवं साधन के पथ में आने वाली सभी समस्याओं एवं उनका अतिक्रमण कर गुरु, वैष्णव सेवा में उत्साह प्रदानकारी उपाय का बड़े अद्भुत ढंग से निदर्शन किया है जिसका पठन-पाठन एवं मनन हर मंगलप्रार्थी साधक के लिए निश्चित रूप से परममंगलदायक सिद्ध होगा।

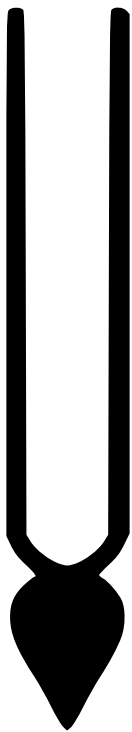

क्या मैंने कोई गलती की?

कभी-कभी मेरे हृदय में ये संशय उठता है कि गौड़ीय वैष्णवों का श्रीचरणाश्रय ग्रहण कर क्या मैंने कोई गलती की? गौड़ीय मठ के वैष्णवों का आश्रय ग्रहण कर भजन करने में, विशेष रूप से सर्व इन्द्रियों को मठ की सेवा में नियुक्त करने का सोचकर लगता है कि मुझसे कोई गलती हुई है; क्योंकि ये लोग तो उदार नहीं है, इनके आश्रय में भजन करने से अनेक विधि-निषेधों का पालन करना पड़ता है, जबकि अन्य-अन्य सम्प्रदायों का आश्रय लेने से वहाँ ऐसे सब नियन्त्रण नहीं हैं। वहाँ वैष्णव-अपराध, नाम-अपराध, धाम-अपराध आदि की भी कोई चिन्ता या उपास्य-निष्ठा (श्रीराधाकृष्ण ही मेरे एकमात्र उपास्य हैं ऐसी एकान्तिक निष्ठा) में स्थापित होने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त वहाँ खान-पान में भी कोई निषेध नहीं है ।

मठ में वैष्णव-अपराध की बात उठाकर मेरे इन्द्रियों के रुचिकर कार्यों पर व अनियन्त्रित बातें करने पर नियम लगाया जाता है। यहाँ रहने से मेरी स्वेच्छाचारिता हमेशा ही बाधित होती रहती है। मैं सोचता हूँ कि ऐसे संकुचित होकर, मठ में रहने की अपेक्षा मठ से बाहर रहना अच्छा है। इसके अतिरिक्त, मैं सोचता हूँ कि मेरा ज़ीवन बड़ा सुविधाजनक हो जाएगा, यदि मैं ऐसे नियन्त्रणकारी गुरुदेव के आश्रय में न रहकर अन्य कोई स्थान से दुबारा मन्त्र ले लूँ, जहाँ ये सब विधि-निषेधों के पालन करने की आवश्यकता न हो। कभी-कभी लगता है गौड़ीय मठ के सारे सम्बन्धों को छोड़कर कहीं और चले जाने से अच्छा है किन्तु लोक लज्जा के भय से जा भी नहीं पाता हूँ ।

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के वैष्णव श्री गौरांग महाप्रभु के प्रियतम श्रीरूप गोस्वामी तथा उनका आनुगत्य करने वाले श्रील भक्तिविनोद ठाकुर व श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद के आश्रय में रहकर एकान्त भाव से श्रीगौराङ्गदेव की एवं श्री राधा-कृष्ण की उपासना में नियोजित हैं। श्रीकृष्ण-प्रेम ही उनका साध्य है एवं वही उनका साधन है। अप्रीति या अभक्ति तो श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के सेवकों का साधन हो ही नहीं सकती। प्रीति-विरोधिनी चेष्टा का श्रीचैतन्य गौड़ीय मठादि में किंचित मात्र भी आदर नहीं है ।

जिस साधन से साध्य की प्राप्ति की कोई निश्चितता नहीं है तथा जिस साधन से शीघ्र अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति की कोई सम्भावना ही नहीं है, मेरी समझ में तो नहीं आता कि ऐसा साधन केवल मात्र भीड़ इकट्ठा करवाने के अतिरिक्त और कुछ मंगल करवा पायेगा ।

जो अपना जीवन वृथा ही ब्यतीत करना चाहते हैं तथा स्वेच्छाचारी होकर ही चलना चाहते हैं, उन्हें सद्गुरु का श्रीचरण ाश्रय ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है! जो अपनी गलतियों व अनर्थों को अनुभव कर सकते हैं एवम उनसे मुक्त होकर श्री भगवद्-प्रेमानन्द के अधिकारी होने के इच्छुक हैं, केवल वे ही भगवद्-प्रेमिक साधु-भक्तों के आश्रय में रहते हैं । जो भगवान के अनन्य-भक्तों के आश्रय में, उनके आदेशों व उपदेशों के अनुसार चलते हुए अपनी स्वेच्छाचारिता को छोड़कर, इन्द्रियों को दमन करते हुए भगवान की सेवा में नियोजित रहते हैं, वे ही सुख का अनुभव कर सकते हैं ।

जो केवल बाहर से श्रीगुरुपदाश्रय का अभिनय करते हुए स्वयं को नियन्त्रित व संशोधित (सुधार) करने का छल मात्र करते हैं किन्तु आन्तरिक रूप से अपने पूर्व अर्जित कुसंस्कारों व कुप्रवृतियों का पोषण करने में ही यत्नशील हैं, वह गुरुपदाश्रय के नाम पर

अपने शिष्य बनाते हैं और उन शिष्यों के द्वारा निज स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्रयासरत रहते हैं, ऐसे दम्भी या कपटी व्यक्तियों का मंगल होना बहुत दूर की बात है ।

स्वयं शासित होने या नियन्त्रित होने के लिए ही शिष्यत्त्व ग्रहण करना होता है । अपना परमार्थ मैं अधिक जानता हूँ—इस प्रकार के अभिमान को लेकर केवल बाहरी रूप से श्रीगुरु-पदाश्रय करना विडम्बना, आत्मवन्चना व दूसरों के साथ छल करना मात्र है । शुद्ध गौड़ीय वैष्णव इन सब की अपेक्षा उदार व सर्वोत्तम मंगल प्रदान करने वाले होते हैं । यदि हम उनके जीवन के आदर्शों का कोई एक पहलू भी समझने की योग्यता प्राप्त कर सकें तो हम परमोल्लसित होकर साधन-भजन में तत्पर हो सकते हैं ।

श्रीकृष्ण के प्रेमी-भक्त, भोगी या त्यागी नहीं होते हैं । वे कर्मी या ज्ञानी भी नहीं होते । साधारणत: विकर्मी लोग कर्मियों का सम्मान व आदर करते हैं, जबकि कर्मी, ज्ञानियों का गुणगान करते हैं । भोगों में लिप्त कर्मी व्यक्ति, ज्ञानी व्यक्तियों के बाहरी वैराग्य को देखकर उनकी ओर आकर्षित हो सकता है परन्तु भगवद्-प्रेमार्थी भक्त उपरोक्त कर्मी व ज्ञानी की ओर आकर्षित न होकर भगवद्-प्रेम के अनुकूल आचरण को देखकर ही आकर्षित होता है । श्रीभगवद्-प्रेम को प्राप्त करना जिनका

लक्ष्य नहीं है, वे भक्त के आचरण में केवल भोग या त्याग को ही देख पाते हैं । ऐसे व्यक्ति बाहरी त्याग को देखकर व त्यागी व्यक्ति का आश्रय ग्रहण करके स्वयं को कुछ समय तक धन्य समझ सकते हैं परन्तु इस बाहरी त्याग व इस धन्यता के अनुभव से श्रीकृष्ण-प्रेम को प्राप्त करना सम्भव नहीं है । यदि भगवान के स्वरूप में तात्त्विकी श्रद्धा या प्रीति न हो तो भगवद्-भक्त का आचरण अभक्तों की दृष्टि में आकर्षणीय नहीं होता है ।

भगवान के अनन्य भक्त के चरित्र एवं उनके क्रियाकलाप में, अन्वय या व्यतिरेक हर तरह से श्रीकृष्ण प्रीति का ही अनुशीलन होता है ।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ।।

श्रीभक्तिरसामृतसिन्ध, १. १. ११

[श्रीकृष्ण को सुखी करने की स्पृहा के अतिरिक्त समस्त प्रकार की अभिलाषाओं से रहित, ज्ञानकर्मादि के द्वारा अनावृत, एकमात्र श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए ही कायिक, मानसिक और वाचिक समस्त चेष्टाओं और भाव के द्वारा तैल-धारावत् अविच्छिन्न गति से जो कृष्ण का अनुशीलन अर्थात श्रीकृष्ण की सेवा की जाती है,

उसे (उन समस्त चेष्टाओं को) उत्तमा भक्ति कहते हैं।]

श्रीरूप गोस्वामी कृत श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थ का (उपरोक्त) ये श्लोक चिन्तनीय है। श्रीकृष्ण-भक्त का श्रीकृष्ण की भक्ति के लिए मठ-स्थापन, मन्दिर का निर्माण, विषयी-व्यक्ति या राजपुरुषों के साथ मिलन, महोत्सव आदि का आयोजन व अज्ञानी या श्रद्धालु लोगों को उपदेश प्रदान आदि सभी कार्य शुद्ध भक्ति ही हैं । यही नहीं, भगवान या भगवान के भक्त की सेवा के लिए घर निर्माण करवाना या ऐसे कार्यो का निरीक्षण करना, इनके लिए धन इकट्ठा करना, बाजार जाना व बाज़ार से सामान खरीदना, यहाँ तक कि भिक्षा करने जैसे असम्माननीय नीच कार्य करना भी परम आदरणीय, भक्ति-वर्धक व भगवद्-भक्ति को पोषण करने वाले हैं । इस सम्बन्ध में यह प्रसंग विचारणीय है,

कुष्ठी-विप्रेर रमणी, पतिव्रता-शिरोमणि,
पति लागि कैल वैश्यार सेवा ।
स्तम्भिल सूर्येर गति, जीयाइल मृत पति
तुष्ट कैल मुख्य तिन देवा ।।

चै. च. अ. २०. ५७

[कुष्ठ से ग्रस्त ब्राह्मण की पतिव्रता स्त्री ने पति की संतुष्टि

के लिए पति को प्रिय लगने वाली वैश्या की सेवा की थी। पति की मृत्यु के समय पातिव्रत्य के बल से उसने सूर्य की गति को रोककर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन तीनों देवताओं को संतुष्ट करके अपने मृत पति को जीवित किया था।]

अपने पति की निष्कपट सेवा करने की भावना से की गयी वैश्या की सेवा ने भी पतिव्रता ब्राह्मणी की केवल शोभा ही नहीं बढ़ायी अपितु उसे संसार में पूज्य व भगवान की कृपा-पात्रा भी बना दिया । दूसरी ओर ब्राह्मणी का यह कार्य यदि उसके अपने इन्द्रिय तर्पण अथवा धर्म, अर्थ व काम आदि के लिए ही किया गया होता तो वह कार्य हर दृष्टिकोण से घ्रणित या धिक्कार देने योग्य हो जाता । इसी प्रकार वैकुण्ठ वस्तु भगवद्-धाम, भक्त व भगवान की निष्कपट सेवा के लिए मठ-मन्दिर का निर्माण, विषयी या राजपुरुषों से मिलन, महोत्सवादि का आयोजन व हरिनाम मन्त्रादि प्रदान—ये सभी कार्य भगवद्-भक्ति को वर्धन एवं पोषण करने वाले तथा भगवद्-प्रेम को हृदय में प्रकट करने वाले होते हैं किंतु अपने इन्द्रिय तर्पण, कनक-कामिनी व प्रतिष्ठा के संग्रह व धर्म-अर्थ कामादि के लिये किये गये यह सब कार्य संसार में बन्धन के ही कारण बन जाते हैं ।

साधारणत: अपनी आसक्ति जिसमें है उस वस्तु को छोड़

देने को ही दुनियाँ के लोग त्याग कहते हैं, परन्तु मान लिया जाए कि किसी वस्तु को खाने से किसी की ब्याधि बढ़ रही है और वह उस वस्तु को खाना छोड़ दे तो क्या ये त्याग कहलाएगा? किसी प्रकार का खाद्य खाने से यदि कोई ब्याधिग्रस्त होता है और इस कारण से यदि उस खाद्य पदार्थ को न खाकर दूसरे प्रकार का खाद्य पदार्थ खाए तो ऐसे त्याग या वैराग्य की क्या महिमा है? इसी प्रकार यदि कोई अपने शारीरिक व मानसिक सुख के लिए पिता, माता, सम्बन्धी, विषय, सम्पत्ति, व्यवसाय व दुनियावी कर्त्तव्य छोड़ दे तो ऐसे त्याग की क्या महिमा रह जायेगी, ये मेरी समझ से बाहर है । सांसारिक सुखों अथवा अपनी आसक्ति की वस्तुओं को यदि कोई पूर्ण वस्तु के सुख के लिए अर्थात् भगवान के सुख के लिए त्याग करे तो उसे ही वास्तविक त्याग कहा जाएगा। यदि कोई व्यक्ति अपने त्याग के बदले में सांसारिक सुख, धर्म, अर्थ काम व मोक्षादि अथवा कनक, कामिनी व प्रतिष्ठा को प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखता तो ऐसे त्याग को वास्तविक त्याग कहा जा सकता है । अन्यथा, शास्त्रों के अनुसार अपने वर्णाश्रम धर्म के कर्तव्यों को त्याग करना अधर्म कहलाता है । वेदों में वर्णित वर्णाश्रम धर्म या उसके कर्तव्यों को कोई, सभी कारणों के कारण व सर्वानन्द प्रदान करने वाले भगवान श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए त्याग करे तो ही उसका ये त्याग अति सम्माननीय, प्रशंसनीय व

सर्व जनहितकर होता है । पूर्ण वस्तु भगवान की सेवा के लिए अपने इन्द्रिय-तर्पण की चेष्टाओं को छोड़ना व भगवान की प्रसन्नता के लिए अपनी स्वेच्छाचारिता एवं दुनियावी व स्वर्गीय सुखों को परित्याग करना ही बलशाली का कार्य है। इस कार्य को महान कार्य कहा जा सकता है। यद्यपि भगवान के लिए व भगवान के ऐकान्तिक भक्तों के लिए अपनी स्वतन्त्र इच्छा तक को त्याग करना ही श्रेष्ठ त्याग कहलाता है । स्थूल वस्तुओं को त्यागने की अपेक्षा ऐसी मनोवृत्ति को त्यागना व स्वयं को समर्पित करना ही सर्वोत्तम त्याग है ।

जिनके लिए त्याग किया गया उनकी महिमा से उस त्याग की महिमा कही जायेगी । भगवान व उनके प्रेमी-भक्त की महिमा असीम है, इसलिए उनके लिए किया गया त्याग ही सर्वश्रेष्ठ महिमान्वित त्याग है । ऐसे त्याग की कोई तुलना नहीं है क्योंकि यह त्याग सभी प्राणियों का भगवान के साथ जो सम्बन्ध है उसे जाग्रत करके उनके आनन्द को वर्धित करने वाला है, इससे किसी भी चिद्-सत्ता को व उनके आश्रित-तत्त्व को लेश मात्र भी क्लेश नहीं हो सकता।

कर्मी व्यक्ति का त्याग व उसकी तपस्या भविष्य में मिलने वाले इन्द्रिय सुखों की लालसा से होते है । ये त्याग व तपस्या

संकीर्ण भावना से हैं । ये सभी के लिए सुखप्रदायक क्रिया नहीं है । इसी प्रकार ज्ञान मार्ग पर चलने वाले ज्ञानी का त्याग और तपस्या भी केवल मात्र उसके अपने दु:खों की निवृति की भावना से होते है । अत: ये त्याग-तपस्या भी सर्वसुखद नहीं है; जबकि भगवद् भक्त का त्याग व तपस्या केवल मात्र श्रीहरि की प्रीति के लिए होते है । भगवान श्रीहरि सभी कारणों के कारण हैं, अत: उनके लिए किया गया त्याग व तपस्या से ही स्वयं तथा दूसरों का वास्तविक कल्याण होता है ।

यही कारण है कि गौड़ीय वैष्णव, भगवान श्रीहरि की प्रीति के प्रतिकूल सभी कार्यों को परित्याग कर देते हैं । इस साधन के द्वारा हरि-भक्ति के अनुकूल भोग व त्याग दोनों का ही समादर हुआ है । वैसे भी भगवान के भक्त दुनियावी भोग व त्याग की ओर आकृष्ट नहीं होते, वे तो भगवद्-प्रेम व भक्त-प्रेम की ओर ही आकर्षित रहते हैं । स्वतन्त्र रूप से भोगों की इच्छा या त्याग की इच्छा उनमें नहीं होती है । युक्त वैराग्य ही उनकी साधना है । हरिभजन का रहस्य समझ में न आने के कारण ही व्यक्ति का भोगों की ओर या त्याग की ओर मोह पैदा होता है जो कि साधक के लिए भगवद्-प्रेम की प्राप्ति में बाधकस्वरूप है । मनुष्य जीवन परमार्थ प्राप्ति के लिए सुवर्ण सुयोग है, इस

बात का अनुभव जिनको हो चुका, वे इस जीवन के प्रत्येक मुहूर्त को अत्यधिक मूल्यवान समझकर जीवन के किसी भी क्षण को परमार्थ-साधन के अतिरिक्त अन्य किसी व्यर्थ के कार्यों में व्यतीत नहीं करते । वे जानते हैं कि मनुष्य जीवन के अतिरिक्त अन्य जीवनों में परमार्थ की साधना का सौभाग्य व सुयोग नहीं होता इसलिए उन जीवनों में प्राप्त समय का अधिक मूल्य नहीं है । जिन्हें सुदुर्लभ मनुष्य जीवन के मूल्य का अनुभव हो गया है तथा उसमें भी जिन्हें साधु-संग का सौभाग्य प्राप्त हो गया है या भगवद्-भजन में जिनकी श्रद्धा हो गयी है, वे अपने जीवन का एक क्षण भी श्रीकृष्ण की प्रीति के अनुकूल कार्यों को करने व प्रतिकूल कार्यों का परित्याग करने में न लगाकर व्यर्थ कैसे व्यतीत कर सकते हैं? यही कारण है कि गौड़ीय मठ के साधु हमेशा ही श्रीकृष्ण-प्रेम की प्राप्ति के बाधक-स्वरूप असदाचारों को छोड़कर सदाचारों को ग्रहण करने के लिए उपदेश देते रहते हैं । वे कभी भी ईर्ष्या या मत्सरता को प्रोत्साहन नहीं देते। व्यक्ति के अन्दर ईर्ष्या की भावना तो केवल मात्र भगवद्-प्रेम की विरोधि नी चेष्टा मात्र ही है ।

अतएव यदि यथार्थ रूप से श्रीकृष्ण प्रेम ही मेरा लक्ष्य है, तो मैंने शुद्ध गौड़ीय वैष्णवों का श्रीचरणाश्रय ग्रहण करके कोई

गलती नहीं की । ये बात पूर्णतः सत्य है कि धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष-कामी होने से या कनक, कामिनी व प्रतिष्ठा के लिए उत्साहित होने से श्रीचैतन्य गौड़ीय मठादि में या गौड़ीय वैष्णवों से कोई ईंधन नहीं मिलेगा । यहाँ पर समस्त अनर्थों से मुक्त होकर श्रीकृष्ण-प्रेम की प्राप्ति के लिए ही सहायता की जाती है । श्रीकृष्ण-प्रेम के भिक्षुक (श्रीकृष्ण-प्रेम की प्राप्ति की उत्कण ठा रखने वाले) ही श्रीचैतन्य गौड़ीय मठादि का आश्रय लेकर व शुद्ध गौड़ीय वैष्णवों का चरणाश्रय ग्रहण करके सर्वोत्तम मंगल की प्राप्ति करने में समर्थ होते हैं । हमें पूर्ण विश्वास है कि श्रीकृष्ण-प्रेम के कंगालों का ये आचरण ही उन्हें सर्वोच्च उदारता के आदर्श व शुद्ध वैराग्य के सबसे ऊँचे शिखर पर पहुँचा देगा व स्थापित कर देगा।

व्यक्ति यदि घोरतर अपराधी न हो तो यथा समय सभी को भगवद्-प्रेम की प्राप्ति होगी, कोई भी इससे वन्चित नहीं रहेगा । श्रील प्रभुपाद जी की कृपा से श्रीसारस्वत गौड़ीय वैष्णव सारे जगत में महामहिमान्वित तथा पूज्य होंगे । आज श्रील प्रभुपाद जी की कृपा से श्रीसारस्वत गौड़ीय वैष्णव ही विश्व में परोपकार के सु-महान आदर्श को स्थापन करने में समर्थ हैं । श्रीचैतन्य गौड़ीय मठादि के व गौड़ीय वैष्णवों के श्रीचरणाश्रित सेवकों की अवश्य

ही जय-जयकार होगी । अत: मैंने गौड़ीय वैष्णवों का श्रीचरण ाश्रय ग्रहण करके कोई गलती या भूल तो की ही नहीं अपितु ऐसा करके मैंने सर्वोत्तम मंगल की प्राप्ति के सौभाग्य को वरण किया है । मैं अति-अति भाग्यवान हूँ ।

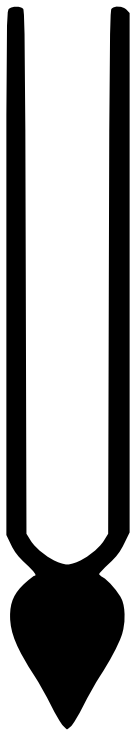

मेरा भजन

बहुत दिन हुए मैंने संसार-त्याग किया है। क्यों संसार को त्याग किया, इस प्रश्न का उत्तर है—मैं भजन करूंगा।

मैं किसका भजन करूंगा? मैं श्रीकृष्ण का भजन करूंगा। श्रीकृष्ण का भजन ही क्यों करूंगा? क्योंकि श्रीकृष्ण ही तमाम कारणों के कारण हैं और उनके साथ ही मेरा नित्य-सम्बन्ध है। श्रीकृष्ण कौन हैं? आनन्दमय सत्ता ही श्रीकृष्ण हैं। जो सभी को अपनी ओर आकर्षित करके आनन्दित होते हैं और सभी को आनन्द प्रदान करते हैं; जो अखण्ड ज्ञानतत्त्व हैं, तत्त्व को जानने वाले व्यक्ति जिनमें सद्, चिद् और आनन्द-तीन प्रकार के भावों का दर्शन करते हैं अर्थात् पूर्ण सच्चिदानन्द तत्त्व वस्तु श्रीकृष्ण ही हैं।

मैं कौन हूँ? मैं श्रीकृष्ण की शक्ति का अंश हूँ। मुझमें भी सद्, चिद् और आनन्द के ये तीनों भाव विद्यमान हैं किन्तु मैं वस्तु-तत्त्व नहीं हूँ। स्वभावगत सद्, चिद् और आनन्द होने के कारण श्रीकृष्ण के साथ ही मेरा नित्य सम्बन्ध है। क्या सम्बन्ध है? अर्थात् मेरा श्रीकृष्ण से क्या सम्बन्ध है?

मेरे सब प्रकार के सम्बन्ध श्रीकृष्ण के साथ ही हैं। उनकी दो प्रकार की शक्तियाँ हैं—परा और अपरास्त्र मुझमें कारण रूप से जो चिद् सत्ता विद्यमान है वह श्रीकृष्ण की परा शक्ति का अंश है। मेरा ये बाहरी शरीर एवं सूक्ष्म शरीर श्रीकृष्ण की अपरा शक्ति का अंश है। मैंने अपने आपको हर प्रकार से उनका समझकर, हर समय उनके भजन में लगे रहने के अभिप्राय से ही संसार छोड़ा है। श्रीकृष्ण के साथ ही मेरी स्थूल देह, सूक्ष्म देह और उनकी कारण आत्मा का सम्बन्ध है। मेरी सारी इन्द्रियाँ सदा श्रीकृष्ण की सेवा करें, यही मेरा भजन है। क्या मैं संसार में अर्थात् गृहस्थ में रहता हुआ भजन नहीं कर सकता था? हाँ, कर सकता था, किन्तु संसार में रहकर संसार के श्रीकृष्ण-विमुख व्यक्तियों के रुचिकर कार्य न करने से उनके बीच में रहना सुखकर न होता। जबकि मैं अपने इस अमूल्य जीवन का एक क्षण भी श्रीकृष्ण भजन के अतिरिक्त कार्यो में लगाकर इस जीवन को व्यर्थ नहीं करना चाहता। मैंने अपनी विभिन्न इन्द्रियों को नाना प्रकार से श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए नियोजित रखने का सुअवसर प्राप्त करने के लिए ही परम करुणामय एवं स्नेह की खान, महा. प्रभु जी के सेवक-विग्रह (श्रीगुरुदेव) का संग प्राप्त किया है। उन्होंने स्नेहवश मेरी अयोग्यताओं की ओर ध्यान न देकर, मेरी भजन-लालसा को समृद्ध करने के लिए मुझे अपने सेवक के रूप

में अंगीकार किया है। उनकी कृपा-स्पर्श से और भी उत्साहित होकर मैंने सब इन्द्रियों द्वारा अनन्य रूप से श्रीकृष्ण भजन करने का संकल्प ग्रहण किया है। मैंने नश्वर शास्त्रविहित कर्त्तव्यों का परित्याग करते हुए आत्मसम्बन्धी मुख्य कर्त्तव्यों का दृढ़ चित्त से पालन करना शुरू कर दिया। जब मैंने ऐसा करना शुरू किया तो सज्जन लोग मेरी अपने घर व अपने शरीर के प्रति उदासीनता को देखकर मुझे आत्म अनुशीलन करने वाला साधु जानकर मेरा सम्मान करने लगे। इस प्रकार हर जगह मेरा आदर-सम्मान होने लगा। मैंने एकान्त पारमार्थिक जीवन यापन करने और शिष्य रूप से अनुशासन में रहकर अपने आपको संशोधन करने का संकल्प लिया था किन्तु पूर्व अर्जित दुष्ट संस्कारों के कारण पुनः देह को आराम देने और प्रतिष्ठा के लिए लोलुप हो उठा। पहले मुझे श्री गुरुदेव बहुत अच्छे लगे थे किन्तु अब इन्द्रिय तर्पण की इच्छा होने के कारण उन्हें बाधा सी जानकर, मैं उन्हें ही एक अन्य रूप में देखने लगा हूँ। अब मैं उन्हें अपना हित करने वाला नहीं समझता। उनके साथ मेरा एक पूज्य सम्बन्ध होने के कारण मैं तो उन पर शासन भी नहीं कर सकता। दूसरी ओर उनका शासन मानने से मैं अपनी इच्छा के अनुसार भी नहीं चल सकता—दोनों तरफ से फंस गया हूँ।

मैंने श्रीकृष्ण भजन का जो संकल्प लिया था, धीरे-धीरे

मैं उसे भूल गया। श्रीकृष्ण भजन की चेष्टा तो नाममात्र ही रह गयी है, वास्तव में तो अब अपनी इन्द्रियों के सुख की आशा को छोड़कर कुछ भी मेरे हृदय को आनन्दित नहीं करता है। पहले श्रीकृष्ण की सेवा का सुअवसर मिलने पर मैं अपने आप को सा. भाग्यवान समझता था जबकि अब श्रीकृष्ण की सेवा का अवसर मिलने पर मुसीबत अनुभव करता हूँ। पहले श्री गुरुदेव जी की सेवा मिलने पर अपने आप को कृतार्थ समझता था किन्तु अब श्री गुरुदेव जी की सेवा मुझे जंजाल सी लगती है। पहले मैं साधु, भक्त एवं वैष्णव-सेवा के लिए उत्साहित रहता था और अब यदि कोई साधु-वैष्णव की सेवा के लिए कहे तो मुझे अच्छा नहीं लगता। निरन्तर प्रशंसा, सर्वोत्तम रूप से सम्मान, उत्तम आसन, पहनने के लिए सुन्दर वस्त्र और उत्तम भोग्य वस्तुएं न मिलने पर मेरा चित्त दुःखी होता रहता है। लोक लज्जा के भय से कई बार ये सब बातें मैं मुख से बोलने में भी संकोच कर जाता हूँ किन्तु इन सब के न मिलने पर मैं अधिक दिन तक भक्तों के खाते में अपना नाम रख पाऊंगा, इसमें मुझे सन्देह हैं।

श्रीकृष्ण भजन के स्थान पर अब मेरा अपना भजन ही मुख्य हो गया है। मेरी इन्द्रियों के भजन के साथ अर्थात् अपने इन्द्रिय सुख भोग के साथ साथ यदि अपने आप ही श्रीकृष्ण-भजन, श्री गुरु-भक्ति या वैष्णव सेवा हो जाये तभी मैं भजन कर पाऊंगा।

मैं प्रतिदिन श्रीहरिगुरु-वैष्णवों की वन्दना करता हूँ किन्तु अपना स्वरूप हरिगुरु-वैष्णव से अभेद समझ कर धीरे-धीरे मैं ही उनका स्थान ले रहा हूँ एवं जगत को, वैष्णवों को और भगवान को अपने सेवक के रूप में पाने की इच्छा कर रहा हूँ।

अब श्रीकृष्ण मेरे भजनीय नहीं रहे। अब स्व-इन्द्रिय तृप्ति का विचार ही मेरा भजनीय है। सभा में व समाज में, मैं अपने मुख से अपने आपको श्री हरिगुरु व वैष्णवों का दास बतलाकर एक वैष्णव के रूप में ख्याति अर्जित करने में कोई कमी नहीं रखता किन्तु हृदय में अपने को वैष्णव, गुरु और भगवान से कम मानने को भी राजी नहीं हूँ। जो थोड़ा बहुत सम्मान मैं श्रीगुरु-वैष्णव को देता हूँ, वह भी समाज के लोगों में अपने आप को साधु भक्त के रूप में प्रमाणित कर प्रतिष्ठा पाने के लिए ही देता हूँ।

मेरी ऐसी दुरावस्था क्यों हुई? वह मैं कभी सोचता नहीं हूँ, ऐसा नहीं है। कभी-कभी सोचता भी हूँ कि कदाचित् जाने अनजाने में मुझसे कोई वैष्णव अपराध हुआ है क्योंकि वैष्णव अपराध से ही तो भक्ति विनष्ट या आच्छादित हो जाती है और इसी वैष्णव अपराध के कारण धीरे-धीरे भोग प्रवृति और कपटता आकर साधक को ग्रास करती है। कभी-कभी अपना अपराध मालूम भी पड़ जाता है किन्तु अपनी गलती स्वीकार करने का

सत्साहस नहीं होता, प्रतिष्ठा और लोकलाज आकर रोक लेती हैं। मैं वैष्णवों से क्षमा प्रार्थना करते हुए उनकी प्रसन्नता के लिए चेष्टा करने में उत्साही नहीं हूँ। मैं बर्हिमुख लोगों के मनोरंजन की ओर अधिक ध्यान देता हूँ और उनसे (अपने मन में) कल्पित सम्मान पाने की इच्छा करता हूँ। जबकि श्रीहरि गुरु-वैष्णवों की संतुष्टि की ओर मैं ध्यान नहीं देता हूँ। मैं अज्ञ (मूर्ख) व्यक्तियों को धोखा देकर सम्मान प्राप्त करने की आशा से कभी निर्जन भजन और कभी माधुकरी (भिक्षा) वृत्ति का ढोंग दिखाता हूँ इतने पर भी मेरा चन्चल मन सुखी नहीं होता। इनमें भी यथेष्ट प्रतिष्ठा न मिलने पर और-और रास्ते अपनाने के लिए बाध्य हो जाता हूँ। इस प्रकार मेरा श्रीकृष्ण भजन कभी धन इक्ट्ठा करना तो कभी नारी के कृपा कटाक्षों को प्राप्त करने की आशा से उसकी खुशामद और सेवा के रूप में तथा कभी प्रतिष्ठा के भजन के रूप में रूपान्तरित हो रहा है।

इस दुरावस्था में, मेरे बन्धु मुझे अपना ख्याल छोड़कर शास्त्र वचन और साधु-गुरु उपदेशों के द्वारा नियंत्रित होकर चलने का बार-बार उपदेश देते हैं। पहले मैं उनके उपदेशों को अमृत के समान समझकर ही संसारिक सुखों को तिलांजलि देकर भजन करने आया था किन्तु मेरा दुर्भाग्य मुझे साधु वेश में रखकर कभी व्यक्त तो कभी अव्यक्त रूप से धन, स्त्री और प्रतिष्ठा के लिए

पागल बना देता है। अब उनके हितोपदेश मुझे मंगलकर नहीं लगते। श्रेय और प्रेय—इन दो मार्गों की बात मैंने पहले सुनी भी थी परन्तु मेरा दुर्भाग्य ही मुझे धीरे-धीरे श्रेय पथ से प्रेय पथ पर ले जा रहा है। भगवान और भक्तों की कथा सुनने में मेरा उत्साह नहीं होता। मन में बार-बार ऐसा विचार आता है कि एक जैसी बातें भला कितनी बार सुनूंगा। हरिकथा श्रवण करने बैठता भी हूँ तो साथ साथ निद्रा देवी आकर मुझे बहुत परेशान करती है किन्तु यदि कोई विषय-भोगों की बातें सुनाता रहे तो तब निद्रा देवी तंग नहीं करतीं ऐसे में तो मैं सारी रात जागने में भी समर्थ हूँ। मैं श्रीमद्भागवत् की इस बात को भूल गया हूँ,

शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम्।
कालेन नातिदीर्घेण भगवान् विशते हृदि।।

श्रीमद्भागवतम् २. ८. ४

[जो श्रीहरि की सुमंगल कथाओं का श्रद्धापूर्वक नित्य श्रवण अथवा स्वयं कीर्तन करते हैं, भगवान उनके हृदय में थोड़े ही समय में प्रकट हो जाते हैं।]

श्री गीता में उपदिष्ट अभ्यास-योग की बात भी मैं भूल गया। दो-चार भक्ति की बातें सुनकर मैं समझ बैठा कि मैं भक्ति को

जान गया हूँ। भक्तों का स्वरूप भी मैंने अपने काममय नेत्रों द्वारा जान लिया है, अब तो मात्र भगवान को समझना बाकी है। भक्ति और भक्तों का स्वरूप मेरे काममय चित्त में प्रतिबिम्बित नहीं हो सकता, ये बात तो मैं भूल ही गया। शरणागति की महिमा भी मैं भूल गया।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणते तनूं स्वाम्।

मुडक उपनिषद ७. २. ७

[भगवान न प्रवचन से, न बुद्धि से और नही बहुत शास्त्र-ज्ञान से प्राप्त होते हैं, बल्कि वही उनको प्राप्त करता है, जिन पर वे कृपा करते हैं और अपने यथार्थ रूप को प्रकाशित करते हैं।]

इस श्रुति वचन को कई बार सुनने पर भी मैं इसे स्मरण नहीं करता। आरोहपथ में भक्त और भगवद्-संग सम्भव नहीं है, यह भी मैं भूल गया। मैं तो देखता हूँ कि मेरा चित्त कभी-कभी तपस्या और कभी सद्कर्म की ओर आकर्षित होता है। तपस्या या सद्कर्म आदि से भगवद्-संग प्राप्त होने वाला नहीं है, ये जानते हुए भी मैं भूल गया।

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।

नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्येविना महत्पादरजोऽभिषेकम्।।

श्रीमद्भागवतम् ५. १२. १२

[हे रहुगण! महापुरूषों के चरणों की धूल से अपने को नहलाये बिना केवल तपए यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादि के दान, ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यास अथवा जल, अग्नि और सूर्य आदि देवताओं की उपासना द्वारा यह परमात्म ज्ञान प्राप्त नही हो सकता।]

नैषां मतिस्तावदुरु क्रमाङ्घ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं निष्किन्चनानां न वृणीत यावत्।।

श्रीमद्भागवतम् ७. ५. ३२

[जब तक जीव अकिंचन, भगवत्-प्रेमी, महात्मा, भगवद्-भक्तों के चरों की धूल में स्नान नहीं कर लेता, तब तक समस्त अनर्थों का नाश करने वाले भगवत्चरणोंमें उसकी मति नहीं लगती ।]

मैं पहले किये गए संकल्प तथा श्री गुरुदेव के सन्मुख की हुई प्रतिज्ञा की बात भी भूल गया हूँ। मुझ श्रीकृष्णदासानुदास का, सपरिकर श्रीकृष्ण सेवा के अतिरिक्त और कोई भी कृत्य या स्वार्थ नहीं हो सकता। मैं ब्रह्मांड की सर्वश्रेष्ठ उच्च आंकाक्षा को लेकर

भजन में लगा था किन्तु अब उस उच्च आकांक्षा को छोड़ तुच्छ नश्वर एवं दुःखप्रद विषय लालसा का प्यासा हो गया हूँ। मैं विषय भोगों के लिए इतना लोभी क्यों हो गया हूँ, ये मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि जीवन धारण करने के लिए धन की आवश्यकता है, इन्द्रियों के सुख के लिए ऐसी स्त्री की आवश्यकता है, जो मेरी आज्ञा का पालन करती हुई मेरी सेवा करे। इसके अतिरिक्त समाज में रहने के लिए प्रतिष्ठा की भी आवश्यकता है। जबकि मैं पहले से ही जानता था कि ये सब मेरे भजन में बाधाएं हैं किन्तु दुर्भाग्य से युक्त-वैराग्य के बहाने निम्न श्लोकों को याद करके अपने मन को समझा लेता हूँ कि अभी तो मैं साधना कर रहा हूँ। इस साधनावस्था में तो ये सब रहेंगे ही। ये सोच-सोचकर मैंने इन धन व स्त्री आदि की कामनाओं को हमेशा के लिए छूट दे दी है और अपने मन में इन्हें आश्रय दे दिया है।

जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु
वेद दुःखत्मकान् कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः
ततो भजते मां प्रीतः श्रद्धालु दृढ़ निश्चयः
जुषमाणश्च तान् कामान् दुःखोदर्कांश्च गर्हयन्।।

श्रीमद्भागवतम् ११. २०. २७-२८

[जिस साधक की मेरी कथाओं में श्रद्धा उत्पन्न हो गई है,

यदि वह सभी भोग और भोग-वासनाओं को दु:खरूप जानकर भी उनको परित्याग करने में समर्थ न हो, तो उसे चाहिए कि उन भोगों को सच्चे हृदय से दु:खजनक समझते हुए और मन ही मन उनकी निन्दा करते हुए भोगता रहे, किन्तु साथ ही साथ श्रद्धा, दृढ निश्चय और प्रीतिपूर्वक मेरा भजन भी करता रहे।]

मैं साधक हूँ इसलिए मुझमें अनर्थ तो रहेंगे ही ऐसा समझकर विप्रलिप्सा दोष के बल पर मैं अपने अनर्थों को आश्रय दे रहा हूँ। इनको आश्रय देने की बात तो शास्त्रों में नहीं है, ये बात मैं भूल ही गया था। जब तक मैं शुद्ध भक्ति का रसास्वादन करने के योग्य होकर श्रीभक्त और श्रीभगवान में आविष्ट नहीं हो जाता, तब तक घृणा के भाव से सांसारिक कार्यों को करते हुए भजन करते रहना चाहिए, यही शास्त्रों का उपदेश है। यदि मैं इन अनर्थों का तिरस्कार न करूं, आदर के साथ इन्हें स्वीकार करता रहूँ तो तब ये अनर्थ मेरे हृदय से कभी नहीं जायेंगे ये मैं भूल ही गया था। काम (कामना), भोग, स्त्री संग, धन संग्रह और सांसारिक प्रतिष्ठा की महिमा के बारे में सोचने वाले लोग तो मुझे क्रमश: इनमें ही आसक्त करवायेंगे। एकान्त भाव से श्रीकृष्ण भजन करते हुए भी स्त्री की महिमा का चिन्तन करता करता मैं ब्रह्मचर्य को त्यागकर विवाह के लिए लोभी हो जाता हूँ और ऐसे समय में इसका परिणाम भूल ही जाता हूँ। धन संग्रह करने वालों के दु:ख की ओर

न देखकर उनके आंशिक सुख की बात सोचते-सोचते मैं, जो कि विषय छोड़कर भजन करने आया था, धन एकत्रित करने के लिए पागल हो उठता हूँ। संसार के विषयों में अन्धे लोगों के मुख से क्षणिक प्रशंसा सुनने के लोभ में डूब जाता हूँ। इससे होने वाले अनर्थ को नहीं देखता। शास्त्र, गुरु और वैष्णवों के उपदेशों और उनकी रुचि की ओर ध्यान नहीं देकर मैं उनकी उपेक्षा कर जाता हूँ। कभी-कभी मर्यादा का उल्लंघन कर, यहां तक कि, उनका विद्वेष करके भी दुनियावी प्रतिष्ठा के लिए मग्न रहता हूँ।

मेरी ये दुरावस्था कभी भी मुझे विचलित नहीं करती, ऐसा नहीं है। कभी-कभी मन ही मन में ऐसा सोचता हूँ कि असंयत जीवन के द्वारा मैं स्वयं ही सर्वोत्तम मंगलमय पूर्णानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण प्राप्ति की सम्भावना को नष्ट करके अपना सबसे बड़ा अहित कर रहा हूँ। इसलिए कभी-कभी मन-मन में सब विषयों के प्रति संयत जीवन यापन करने के लिए दृढ़ निश्चय भी कर लेता हूँ किन्तु पूर्व कर्मानुसार अचानक असंयत हो बैठता हूँ। ऐसी अवस्था में क्या मुझे मंगल प्राप्ति का कोई भरोसा नहीं है? सोचता हूँ—निश्चित रूप से है। किसी भी अवस्था में व किसी परीक्षा में असफल होने पर भी निरुत्साहित न होकर साधन भजन के पथ पर लगातार चलता रहूंगा। मेरे नित्य आराध्य पतितपावन और करुणामय प्रभु निश्चय ही मुझ पर कृपा करेंगे।

'श्रीकृष्ण कृपा करिबेन दृढ़ करि मानि'

बंगाल में प्रचलित 'डूबलो यदि ना' तो डूबे डूबे वा'(यदि मेरी नांव डूब रही है, तो डूबते-डूबते भी मैं बचने का प्रयास नहीं छोड़ूँगा) कहावत के अनुसार मैं किसी भी अवस्था में हताश नहीं होऊँगा। पूर्णानंद स्वरूप भगवान में आनन्द प्रदान करने की भावना को छोड़कर और किसी भी प्रकार की कोई वृत्ति रह ही नहीं सकती। वे सबके नियन्ता है इसी कारण से उनकी किसी भी व्यवस्था का उद्देश्य मुझे आनन्द प्रदान करने के अतिरिक्त और कुछ हो नहीं सकता। मैं उनका निजधन हूँ इसलिए वे निश्चय ही मेरी रक्षा करेंगे व मेरा पालन करेंगे, इसमें मुझे कोई संशय नहीं है।

भूमो रखलित पादानां भूमिरेवावलम्बनम्।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो।

विज्ञाप्तिपंचक ३

[जैसे भूमि पर फ़िसल कर गिरने वाले व्यक्ति का सहारा भूमि ही है, वैसे ही आपके प्रति अपराध करने वाले व्यक्ति का भी एकमात्र आश्रय आप ही हैं।]

इस वाक्य को स्मरण करते-करते मैं अपने अपराध मार्जन के लिए भिक्षा करता रहूंगा तथा दृढ़चित्त से उनकी और उनके

प्रियजनों की सेवा में अपने आप को नियोजित करने के लिए उनसे प्रार्थना करता रहूंगा। उनकी कृपा से अनायास ही भक्ति प्रतिकूल मनोवृत्ति से मुक्ति पाकर, उनके भक्तों की सेवा में आनन्द प्राप्त करूंगा। भक्त और भगवान की सेवा ही मेरा भजन है।

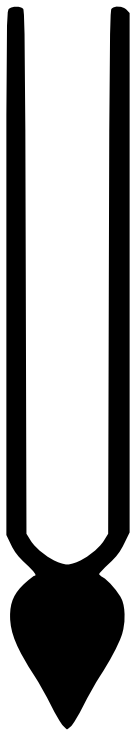

संक्षिप्त परिचय

विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ एवं श्रीगौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंस ॐ १०८ श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद जी के प्रियतम पार्षद, परमहंस परिव्राजकाचार्य, ॐ १०८ श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी, पद्मावती नदी के मुख की ओर स्थित अत्यन्त पवित्र एवं रमणीय वातावरण वाले स्थान काँचनपाड़ा गाँव में स्वधर्मनिष्ठ व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित श्री निशिकांत बंदोपाध्याय एवं भक्तिमति माता शैवालिनी देवी को अवलम्बन कर एक दिव्य बालक के रूप में इस भूधरा पर प्रकट हुये।

जिस प्रकार उत्थान एकादशी के दिन परम करूणामय, परमानन्द स्वरूप श्रीहरि की जागरणलीला सब जीवों के लिए मंगलदायक और आनन्दवर्धक होती है, उसी प्रकार त्रिताप से पीड़ित जीवों के सौभाग्य से श्रीहरि के प्रियतम जन एवं करूणामय मूर्ति श्रील महाराज जी सब जीवों के वास्तविक मंगल के लिए एवं उनके उल्लास वर्धन हेतु उत्थान एकादशी को आविर्भूत हुये।

अद्भुत रूप लावण्ययुक्त सुदृढ़ देह, मधुर स्वभाव, अद्भुत न्यायपरायणता, विषयों के प्रति अनासक्ति, भगवान में अनुराग और

सहनशीलता जैसे अनेक असाधारण गुण आप में शैशव काल से ही प्रकाशित थे जिन्हें देख कर सभी आश्चर्यचकित रह जाते थे।

आपकी प्राथमिक शिक्षा कांचनपाड़ा ग्राम तथा भट्टग्राम में हुई। विद्यार्थी काल में भी आपके श्रीमुख से अत्यंत ज्ञानयुक्त बातें सुनकर सभी अध्यापक विस्मित हो जाते थे। एकबार विद्यालय में खेलकूद प्रतियोगिता के अन्तर्गत बहुत चोट लग जाने पर आपके श्रीअंगों से काफी खून बहने लगा। अध्यापक जब आपके घावों को साफ करने व दवाई लगाने तथा अनेक प्रकार से सहानभूति दिखाने लगे ताकि आप अधिक कष्ट महसूस न करें, तब आपने उनसे कहा, "भगवान जो करते हैं सब मंगल करते हैं, मेरे पूर्व जन्मों का फल और भी खराब था किन्तु भगवान् की कृपा के कारण उतनी चोट नहीं लगी।" बालक के मुख से यह अद्भुत बात को सुनकर सबको तुरंत इस बात का एहसास हो गया और उन्होंने सबके सामने यह घोषणा की, यह बालक कोई सामान्य बालक नहीं है ।

आप एक आदर्श मातृ-भक्त थे। आपकी माताजी आपको अपने पास बिठाकर विभिन्न शास्त्र-ग्रन्थों का पाठ कराती थी। ११ वर्ष की अल्प आयु में ही आपको पूरी गीता कण्ठस्थ हो गई थी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए जब आप कलकत्ता आये तो भगवान के लिए आपकी विरह-व्याकुलता अपने चरम पर थी। आपके पूर्वाश्रम के

संबंधी श्री नारायण मुखोपाध्याय जी ने आपको अपने कमरे में कई बार व्याकुलता से भगवान को पुकारते एवं रोते हुए देखा, उस समय आप मात्र एक समय भोजन करते और निरंतर भगवत् चिंतन में रहते। एक बार स्वप्न में श्री नारदजी ने आपको सांत्वना दी एवं मंत्र प्रदान किया, लेकिन स्वप्न टूटने पर आप मन्त्र भूल गए, बहुत प्रयासों के बाद भी स्मरण नहीं हो पाया, जिससे मन में भगवान के लिए छटपटाहट और बढ़ गई और आपने संसार त्यागने का संकल्प लिया। अपनी भक्तिमति माताजी से आशीर्वाद प्राप्त कर हिमालय की ओर प्रस्थान कर गए। चुम्बक द्वारा खींचे जाने पर जिस प्रकार कोई भी बाधा लोहे को रोक नहीं पाती, उसी प्रकार जब आत्मा का भगवान के प्रति तीव्र आकर्षण होता है तो जगत का कोई भी बन्धन उसे रोकने में समर्थ नहीं होता।

जंगल से घिरे हुए निर्जन पहाड़ पर तीन दिन और तीन रात भोजन व निद्रा का परित्याग कर अत्यन्त व्याकुलता के साथ भगवान को पुकारते पुकारते आप तल्लीन हो गए। भगवान के दर्शनों की तीव्र इच्छा होने के कारण आपका बाह्य ज्ञान जैसे लुप्त प्राय: हो गया था। उसी समय आकाशवाणी हुई, "आप जहाँ पहले रहते थे वहाँ आपके होने वाले श्रीगुरुदेव जी का आविर्भाव हो चुका है, इसलिए आप अपने स्थान पर वापस लौट जाएं"—दैववाणी के आदेश को शिरोधार्य कर आप हिमालय से नीचे हरिद्वार में आ गए। वहाँ आपने कुछ दिन ठहर कर आगे जाने का निश्चय किया ।

परन्तु दैवचक्र से कुछ दिन हरिद्वार में रहने की आपकी अभिलाषा में विघ्न आ उपस्थित हुआ, एक हिन्दीभाषी धनी व्यक्ति, अपनी धर्म-पत्नी को साथ लेकर तीर्थस्नान व दर्शन करने वहाँ आया था। वे दोनों आपकी यौवनावस्था और सुन्दरता को देखकर आकर्षित हुए और आपको बहुत सी खाने की वस्तुएँ दी और आपके साथ बहुत प्यार और स्नेह का व्यवहार किया। उनकी कोई सन्तान न थी उन्होंने यह प्रस्ताव रखा, "यदि आप हमारे प्रतिपाल्य पुत्र बन जाऐं; तो आप हमारी सारी सम्पत्ति के अधिकारी बन सकते हैं ।" वे अपना प्रस्ताव स्वीकार कराने के लिए हठ करने लगे। मन-ही-मन आपने चिन्ता की —"मैं तो संसार छोड़ कर आया हूँ, परन्तु माया मुझे एक अन्य तरीके से आकर्षण करना चाहती है ।" आपने उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और हरिद्वार में अधिक ठहरने की इच्छा को छोड़ कर कलकत्ता वापस आ गये। जिस हृदय में भगवान् को पाने की निष्कपट इच्छा व तीव्र व्याकुलता हो तो उस हृदय को जगत का कोई भी प्रलोभन खींच नहीं सकता। यह घटना लगभग १९८५ की है।

उसी वर्ष कलियुग पावनकारी श्री चैतन्य महाप्रभु जी के प्रकट स्थान, श्रीधाम मायापुर में महा तेज से परिपूर्ण, गौरकान्ति, घुटनों तक लम्बी भुजाएँ, दीर्घ आकृतिवाले अतिमर्त्य महापुरूष जगतगुरु श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद जी के अलौकिक दर्शन कर आप विस्मित हो गये, तब ही आपके हृदय में एक ऐसी अनुभूति हुई

कि निश्चय ही यह मेरे दैववाणी के बताये हुए श्रीगुरु गुरु पादपद्म ही है, जिनका आश्रय करने से मुझे अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होगी। आप बड़ी श्रद्धा के साथ प्रभुपाद जी को प्रणाम कर उनके चरणों में बैठ गये। बहुत समय तक अपूर्व हरिकथा श्रवण करके आपने अपने हृदय में एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव किया।

श्रील प्रभुपाद जी की दिव्य मूर्ति और वीर्यवती कथा आपके हृदय में गम्भीर रूप से घर कर गई। प्रभुपाद जी के सेवकों से मालूम पड़ा कि श्रील प्रभुपाद जी शीघ्र ही कलकत्ता पदार्पण करेंगे। आप अपने आपको परम सौभाग्यवान समझ कर, प्रसन्नचित होकर कलकत्ता वापस आ गये और प्रभुपादजी के कलकत्ता आने पर आप प्रतिदिन नियमित रूप से उनसे हरिकथा सुनने के लिए जाने लगे। वैष्णव सेवा द्वारा हरिभजन में आनेवाली सब बाधायें दूर होंगी और शीघ्र ही भगवत् कृपा की प्राप्ति होगी, इस विचार से आप गुप्त रूप में वैष्णव सेवा के लिये मठ में बहुत सारे द्रव्य भेजने लगे।

आपने विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन की लीला भी प्रकाशित की। आपने शंकराचार्यजी के भाष्ययुक्त वेदान्त का पाठ और अध्ययन करके उसे ही बुद्धिमत्ता की चरम सीमा समझा था परन्तु श्रील प्रभुपाद जी के मुखारविन्द से श्रीमहाप्रभु जी की शिक्षा और सिद्धान्त सुनकर, उसे अधिक युक्तिसंगत जानकर हृदयंगम् कर लिया। श्रील गुरु पादपद्म

में आत्मसर्पण की लीला करते हुए आपने श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी के निकट ४ सितम्बर, सन् १९२७, श्रीराधाष्टमी की शुभ तिथि पर श्रीहरिनाम और दीक्षा-मन्त्र ग्रहण किया। श्रील प्रभुपाद जी ने आपका नाम श्री हयग्रीव दास ब्रह्मचारी रखा। आपकी गुरुनिष्ठा एवं क्लान्तरहित सेवा प्रचेस्टा को देख कर सभी आश्चर्यचकित रह जाते। इसलिए श्रील प्रभुपाद आपको 'वोल्केनिक एनर्जी" वाले कहते थे। यही कारण था कि आप थोड़े समय में एक तेजस्वी प्रचारक के रूप में प्रख्यात हो गए। आपने सद्शिष्य का एक ऐसा अद्भुत आदर्थ स्थापित किया।

पाश्चात्य देशों में भी श्रीमन्महाप्रभु जी की वाणी का प्रचार हो—श्रील प्रभुपाद का इस प्रकार आग्रह होने के कारण उन्होंने आपको इस कार्य के उपयुक्त समझकर आपको विदेश भेजना निश्चित किया, पासपोर्ट की व्यवस्था भी हो गयी। तभी राजर्षि कुमार शरदिन्दु नारायण राय जी ने प्रभुपाद जी को कहा—विलायत परियों का देश है । वहाँ कम उम्र के सुन्दर युवक को भेजना मैं उचित नहीं समझता हूँ। किसी वयस्क व्यक्ति को भेजना ठीक समझता हूँ । श्रील प्रभुपाद जी ने राजर्षि शरदिन्दु की बात को गम्भीरता से लिया और आपके स्थान पर श्रीमद्भक्ति प्रदीप तीर्थ महाराज जी को भेजना निश्चित किया ।

आप में भक्ति-सिद्धान्तों के प्रतिकूल विचारों को खण्डन

करने, भक्ति के अनुकूल विचारों को स्थापन कर समझाने की अति-अद्भूत क्षमता थी, इसलिए श्रील प्रभुपाद जी ने बंगाल के श्रेष्ठ पंडित श्री पंचानन तर्करत्न, जिसने श्रील प्रभुपाद जी के शास्त्र युक्ति सम्मत दैववर्णाश्रम धर्म विचार की तीव्र समालोचना की थी, और भारत के विख्यात वैज्ञानिक डॉ. सी.वी. रमन के साथ साक्षात्कार करने के लिए आपको ही भेजा। वार्तालाप में देखा गया कि अगाध पांडित्य होने पर भी सिद्धान्त-विषय में दोनों अनेक स्थानों पर सुसमाधान न दे सके, वे विचार करते-करते blind lane में पहुंच कर प्रश्नों के सही उत्तर देने में असमर्थ हो जाते।

आपकी प्रत्युत्पन्नमतित्व एवं उपस्थित बुद्धि (presence of mind) इस प्रकार थी कि आपके सामने कोई अयुक्तिसंगत बात टिक नहीं सकती। केवल तथाकथित पांडित्य के द्वारा ये असाधारण योग्यता सम्भव नहीं है। जो शिष्य गुरुदेव के प्रति समर्पित-आत्मा है, जिन्होंने गुरूदेव की कृपा से सत्य वस्तु को साक्षात् अनुभव कर लिया है, गुरु शक्ति के प्रभाव से वे एक प्रकार की ऐसी ईश्वरीय शक्ति प्राप्त कर लेते हैं, जिसके सामने भगवद्-अनुभूतिरहित व्यक्तियों की बुद्धिमत्ता नहीं चल पाती।

सन् १९४४ फाल्गुनि पूर्णिमा को, गौर आविर्भाव तिथि पर आपने श्री टोटा गोपीनाथ जी के मन्दिर (श्रीपुरूषोत्तम धाम, उड़ीसा)में

अपने गुरुभाई परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद् भक्ति गौरव वैखानस महाराज जी से सात्वत विधान के अनुसार त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया और परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। संन्यास ग्रहण करने के पश्चात, विश्व वैष्णव राजसभा ने आपको विशेष रूप से सम्मानित किया। श्री विश्ववैष्णव राजसभा से लिखित अभिनन्दन पत्र में आपकी निर्भीकता, सत्साहस एवं प्रचार में जन-साधारण को मुग्ध करने की क्षमता तथा इनके अतिरिक्त श्रील प्रभुपाद जी के आनन्द-वर्धनकारी व वैष्णव प्रीति आदि महान गुणों का वर्णन किया गया।

गुरुनिष्ठा तथा गुरुदेव जी के वैभव (गुरुभाईयों) में प्रीति आपका एक आदर्श थी। श्रील प्रभुपाद जी के अप्रकट हो जाने के बाद यदि कभी आपके गुरुभाई किसी विपरीत परिस्थिती में पड़ जाते थे तो आप हमेशा अपने सुख-दुःख की चिंता न करके उनकी सहायता करने कि लिए उनके पीछे खड़े हो जाते थे। उस समय मठ की बाहरी अवस्था अनुकूल न होने के कारण व उस विपरीत परिस्थिति से सामञ्जस्य न बिठा पाने के कारण प्रभुपाद जी के बहुत से शिष्य मठ त्याग कर वापस जाना जहते थे तो आपने ही बड़ी मुश्किल से उनको समझा-बुझाकर मठ में रखा। यहाँ तक कि, जो गुरुभाई घर चले गये थे उनके घर जा-जा कर स्वयं क्लेश सहन करते हुए भी उन्हें किसी तरह से समझा-बुझा कर वापस मठ में लाये।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण के वैभव (कृष्ण-भक्तों) में प्रीति द्वारा ही श्रीकृष्ण प्रीति का यथार्थ प्रमाण पाया जाता है, उसी प्रकार गुरुदेव के वैभव (गुरुभाईयों) में प्रीति द्वारा ही गुरुप्रीति की पराकाष्ठा प्रदर्शित होती है। अपने गुरूभाईयों में प्रीति की पराकाष्ठा आपके आदर्श जीवन के शेष मुहूर्त तक सुस्पष्ट रूप में अभिव्यक्त रही। आपके असामान्य महापुरुषोचित व्यक्तित्व के कारण संपूर्ण भारत में श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रचार केन्द्र फैल गए। भारत के उत्तर, दक्षिण और पूर्व से पश्चिम सीमा के असंख्य नर नारी श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेम धर्म में आकृष्ट होकर आपका आश्रय ग्रहण कर साधन भजन कर रहे हैं। जिस प्रकार भगवान आर्विभूत होकर अपने भक्तों के विरहात्मक भजन की उत्कर्षता के लिए पुनः अप्रकट लीला करते हैं उसी प्रकार भगवान के भक्त भी विप्रलम्भात्मक भजन प्रकट करने के लिए अप्रकट लीला करते हैं। जितना प्रेम सम्बन्ध प्रगाढ़ होगा विरह भी उतना ही तीव्र होगा। अप्रकट लीला के द्वारा आनुसंगिक रूप से नश्वर जगत की क्षणभंगुरता की शिक्षा का भी प्रदर्शन होता है ।

२७ फरवरी सन् १९७९ मंगलवार शुक्ल प्रतिपदा तिथि को कलकत्ता में ३५ सतीश मुखर्जी रोड पर स्थित श्री चैतन्य गौड़ीय मठ में अपनी भजन कुटीर में महासंकीर्तन के कोलाहल में इस जगत की लीला का संवरण कर सबको विरह सागर में निमज्जित करते हुए आप

नित्यलीला में प्रवेश कर गए। आपके अदर्शन की विरह वेदना आपके प्रियजनों के लिए असहनीय है। अपने आपको नितांत असहाय जानकर वे आज भी आंसू बहा रहे हैं ।